जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थजी

बीसवीं सदी के एक अपूर्व सन्त की प्रेरणात्मक पुण्यकथा

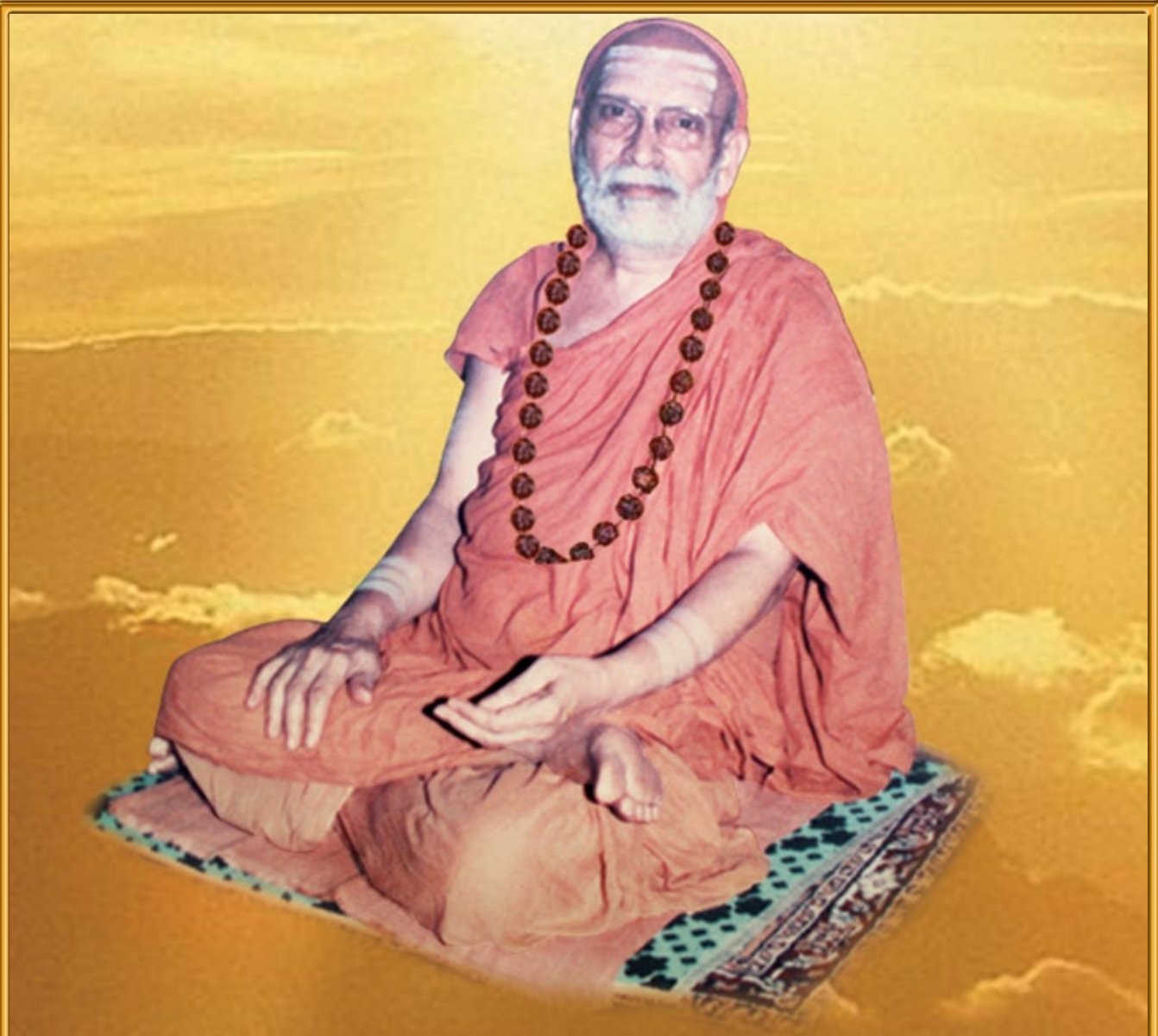

शृङ्गेरी श्री शारदापीठ के पैंतीसवें पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्यजी

जन्मशताब्दी २०१७

बीसवीं सदी के परमपूज्य महान सन्त जगद्गुरु १००८ श्री अभिनव विद्यातीर्थजी महाराज की जीवन गाथा एक असामान्य वृत्तान्त है। उन्होंने अपने तेरहवें बरस में ही सन्यास अपनाया, और योग के पथ पर चलते हुए, आध्यात्मिक साधना की पराकाष्ठा, अर्थात ब्रह्मज्ञान और जीवनमुक्ति, अपने अठारहवें वर्ष में ही प्राप्त किया। महाराजजी दक्षिण भारत की शृङ्गेरी शारदापीठ के पैंतीसवें जगद्गुरु शंकराचार्यजी बनें और इस उत्तरदायित्व को निभाते हुए लाखों लोगों का कल्याण किया।

दिल को छूने वाले उनके अति उत्तम गुण, विशेष आध्यात्मिक साधना, अनुग्रह-शक्ति का प्रभाव, सरलता, सदा हँसमुख स्वभाव, विभिन्न प्रकार के लोगों के प्रति मैत्री-भाव, विविध क्षेत्रों में क्षमता, यात्राएँ और उपदेश, सभी प्राणियों पर दया, इत्यादि को प्रकाशित करने वाले कई वृत्तांतों को इस पुस्तक में दिलचस्प चित्रों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अतः इस बात पर कोई शक नहीं कि महाराजजी के उन्नत जीवन के कई महत्त्वपूर्ण झलक दिखलाने वाला यह चित्रकथा बच्चों से लेकर बडों तक, सभी लोगों के लिए विस्मयकारी और प्रेरणादायक होगी।

यह पुस्तक सन २०१७ में महाराजजी के जन्म शताब्दी के पावन पर्व पर चार भाषाओं (अंग्रेज़ी, हिन्दी, कन्नड़ और तमिल) में छपा और पुस्तकों की ४५,००० से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं । सन २०१८ में महाराजजी के १०१वें जन्मतिथि के पुण्य अवसर पर ई-पुस्तक रूप में यह चित्रकथा उनके चरण कमलों में अर्पित है।

First Digital Edition (Hindi): November 2018

e-Book ISBN: 978-93-5288-208-3

Design, Script in English: Dr. Meenakshi Lakshmanan

Illustrations: Art Nutzz, Chennai 600 029

Art Work Compilation: Dr. Rajitha Venkateswaran
Dr. Suganya Ramadoss
Dr. Meenakshi Lakshmanan

Translation into Hindi: Dr. Meenakshi Lakshmanan
Tamil: Dr. Suganya Ramadoss
Kannada: Dr. Gowri Srinivasa

Published by: Dr. Meenakshi Lakshmanan, Chennai
© Meenakshi Lakshmanan, 2018
E-mail: meenakshi.lakshmanan@gmail.com

जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थजी

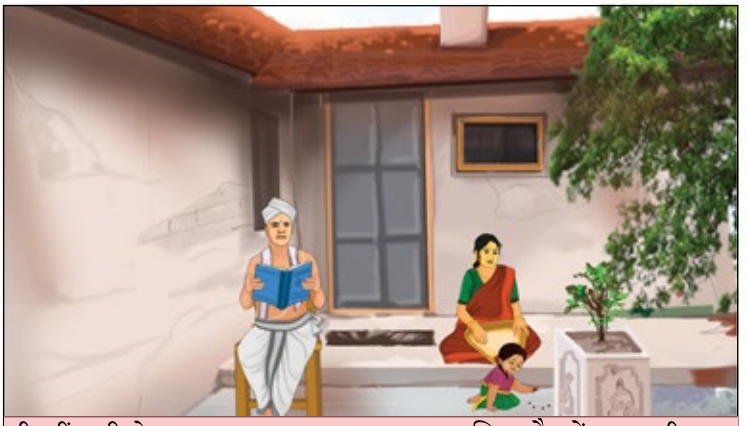

बीसवीं सदी के प्रारम्भ का समय था। राम शास्त्रि और वेंकटलक्ष्मी नाम के पुण्य दम्पति अपनी नन्ही सी बालिका सीतालक्ष्मी के साथ बेंगलूरु* में एक साधारण घर में रहते थे।

दूसरी बार जब वेंकटलक्ष्मी गर्भवती बनी, तब अश्वत्थ वृक्ष की रोज़ परिक्रमा करती आई।

१३ नवम्बर सन १९१७ के दिन पूरा देश दिवाली का पावन पर्व मनाने में लगा था। उस सुबह वेंकटलक्ष्मी ने एक आकर्षक पुत्र को जन्म दिया।

कुछ साल बाद श्रीनिवास को नगरपालिका विद्यालय में दाखिल किया गया।

वह बहुत ही प्रतिभाशाली विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि अन्य बच्चों को जब भी पढाई में मदद चाहिए थी, निःसंकोच उनके लिए समय निकालकर पढाता भी था।

घर में भी वह माँ की बहुत मदद करता था।

*दक्षिण भारत के कर्णाटक प्रदेश की राजधानी

एक बार पड़ोस में किसी बालक की ज़ोर से रोने की आवाज़ आई।

बालक पीड़ा से तड़प रहा था।

श्रीनिवास सदैव दूसरों के कष्टों को खुद पर लेने के लिए तैयार था।

श्रीनिवास के इस करुणामयी प्रस्ताव से द्रवीभूत होकर उस व्यक्ति ने अपने बेटे के पीठ से पत्थर हटा दिया।

एक दिन जब श्रीनिवास और उसके मित्र एक साथ भोजन कर रहे थे, तब सब ने अनजाने में एक बहुत ही तीखा पदार्थ खा लिया।

श्रीनिवास ने शान्ति से चुनौती स्वीकार कर ली। लाई गई सारी हरी मिर्च उसके मुँह में एक एक करके गायब हो गईं!

श्रीनिवास बहुत ही सहनशील बालक था। एक बार उसके साथी उसकी सहनशीलता की परीक्षा लेने के उद्देश्य से उसको पीटने लगे।

अंततः जब पिटाई बन्द हुई तब पूर्णतः शान्ति से खडा श्रीनिवास के गंभीर घावों को देखकर लडके भयभीत हो गए। उस अवस्था में भी श्रीनिवास के मुँह से उन लडकों के प्रति कोमल शब्द ही निकले।

लडकों ने तो अपनी ताकत से श्रीनिवास की दृढता पर विजय पाने की कोशिश की थी, पर अन्त में उल्टा उसके धीरज के सामने खुद झुक गए।

एक बार एक लडका तितलियों के पंखों को काटकर, उन दीन जन्तुओं को एक कुत्ते के सामने फेंक रहा था।

श्रीनिवास ने उसके हाथों को झटके से पीछे खींच लिया।

व्यक्तिगत तौर पर श्रीनिवास सहनशील था और दूसरों को कभी चोट पहुँचाना नहीं चाहता था। किन्तु दूसरों को आहत पहुँचाने वालों को रोकने के लिए परिस्थिति के अनुसार उचित कदम उठाने का धैर्य और क्षमता रखता था।

पास में एक छोटा तालाब था जहाँ सूर्यास्त के बाद कोई नहीं जाता था। लोगों का मानना था कि वहाँ भूत-पिशाच वास करते थे। परन्तु श्रिनिवास निडर था।

मित्रों की चुनौती को मानकर, एक अमावास्य की रात को श्रीनिवास वहाँ पर गया और छोटे तालाब में हाथ-मुँह धोकर वापस आया।

बचपन से ही श्रीनिवास को ईश्वर पर अटूट विश्वास था।

श्रीनिवास के पास गणेशजी की एक छोटी सी स्फटिक मूर्ति थी। वह हर रोज़ निर्मल भक्तिभाव से उस मूर्ति की पूजा करता था।

दोस्तों के साथ बातचीत करते वक्त वह हमेशा बोला करता था कि वह सन्यासी बनना चाहता है।

श्रीनिवास का उम्र सिर्फ बारह था।

एक बार राम शास्त्रि इस गलतफहमी में पड़ गए कि श्रीनिवास ठीक से पढाई नहीं कर रहा था, और उसको सज़ा देने के लिए तैयार हुए। उनको रोकने आए उनके किरायेदार, जो ज्योतिषी भी थे। तब अकस्मात उनकी आँखें बालक की हस्तरेखाओं पर पडी, और वे चौंक गए।

ज्योतिषी ने परिवार का परिचय शृंगेरी* श्रीमठ के प्रतिनिधि से करवाया। उनके द्वारा, श्रीनिवास का उपनयन संस्कार मई सन १९३० को शृंगेरी में आयोजित हुआ।

धार्मिक संस्कारों की पूर्ति के बाद, राम शास्त्रि परिवारसहित शृंगेरी शारदापीठ# के तब के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखर भारतीजी के पवित्र दर्शन करने गए।

बारह वर्ष के बालक के इस विवेकपूर्ण जवाब से जगद्गुरुजी प्रसन्न हुए।

जगद्गुरुजी की अनुमति प्राप्त करके श्रीनिवास शृंगेरी में रहकर संस्कृत और शास्त्रों का अध्ययन करने लगा।

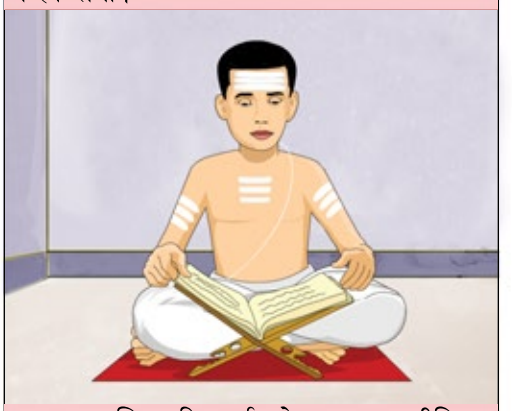

एक सुव्यवस्थित दिनचर्या को अपनाकर श्रीनिवास अनुशासन और निष्ठा के साथ पढाई में जुट गया।

अपार भक्ति, दृढ वैराग्य, सन्यास अपनाने की तीव्र अभिलाषा, सहनशीलता, दया और बौद्धिक प्रतिभा जैसे सद्गुणों से संपूर्ण श्रीनिवास, शारदापीठ के उत्तराधिकारी के पद के लिए सहज रूप से जगद्गुरुजी द्वारा चुना गया।

२२ मई सन १९३१ को इस तेरह वर्षीय ब्रह्मचारी ने परमहंस सन्यास अपना लिया और उनके गुरु महाराज ने परम्परा-अनुसार उनको एक नया नाम प्रदान किया। इसके बाद ये “जगद्गुरु श्री अभिनव विद्यातीर्थ महाराजजी” नाम से जाने गए।

*कर्णाटक के पहाड़ी इलाके में स्थित एक रमणीय तीर्थ स्थल
#आद्य शंकराचार्यजी द्वारा स्थापित चार आम्नाय पीठों में से एक, जो दक्षिण भारत के कर्णाटक प्रदेश में है

महाराजजी तीव्र तपस्या करने लगे। सर्दी के मौसम में शृंगेरी का ठण्ड जब औरों से सहा नहीं जाता था, तब रात को वे गीले वस्त्र में सीधे ज़मीन पर लेट जाते थे।

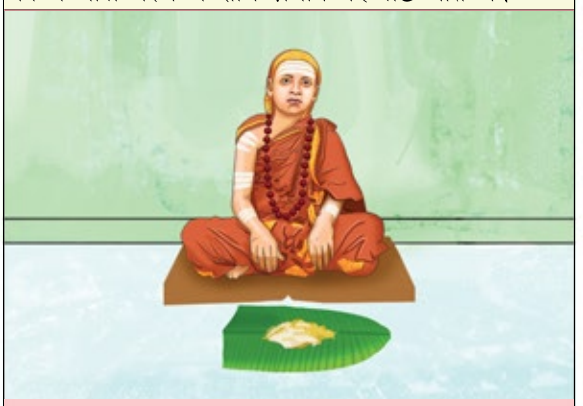

खाने में परोसे गए सभी पदार्थों का मिश्रण करके खाते थे ताकि किसी भी पदार्थ का रसास्वादन न हों।

एक रात, बहुत सारी चींटियाँ उनके कमरे में घुस गई और उनके शरीर को बुरी तरह से ज़ख्मी कर दिया। उन्होंने तो इसके बारे में किसी को बताया तक नहीं।

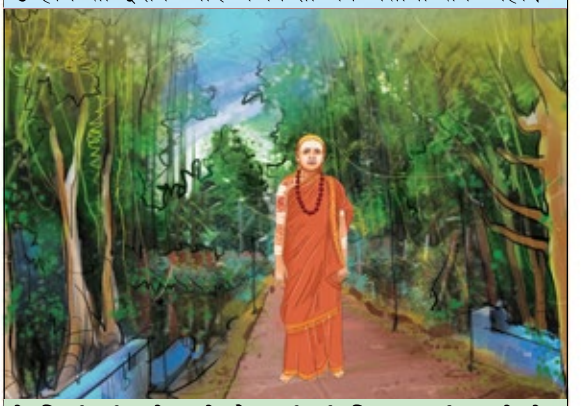

वे किसी चीज़ के बारे में कभी भी विलाप नहीं करते थे। वे सदैव हँसमुख ही रहते थे।

बचपन से ही महाराजजी को प्रकृति बहुत प्यारी थी।

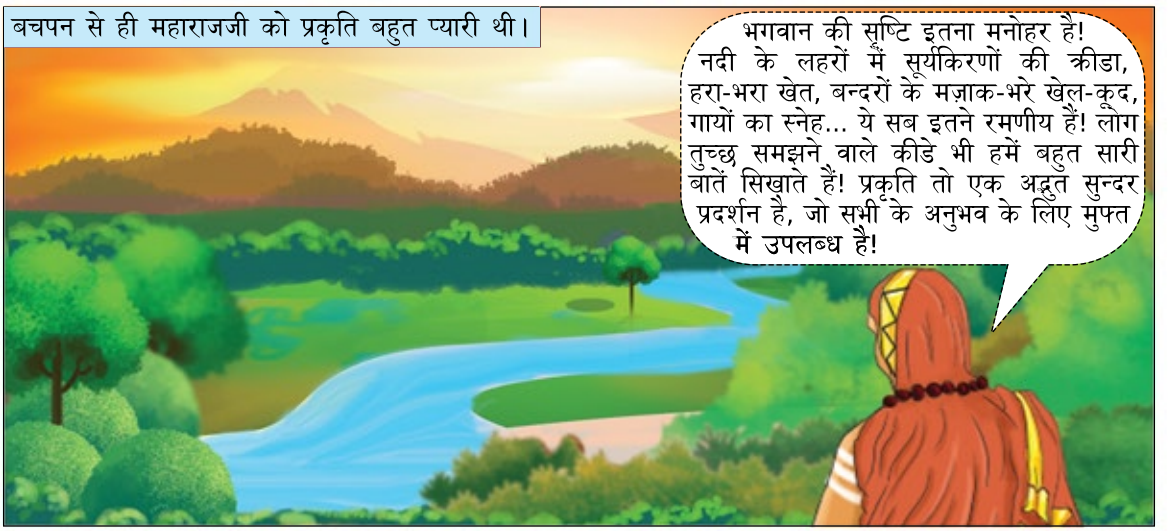

एक दिन उन्होंने एक भिड को देखा, जो एक टिड्डे को मुँह में लेकर आई और अपनी छोटी सी बिल में बन्द कराके चली गई। बिल का मुँह थोडा सा खुला रहा।

महाराजजी बिल के अन्दर की अवस्था की जाँच करना चाहते थे, पर उनके पास आवर्धक काँच नहीं था।

तुरंत वहीं पर उन्होंने ऐसा एक काँच बना लिया। एक पत्ते में छेद बनाकर उसमें बारिश के पानी का एक बूंद डाल दिया...

...और इस नए उपकरण के माध्यम से बिल-वासियों की जाँच खूबी से की।

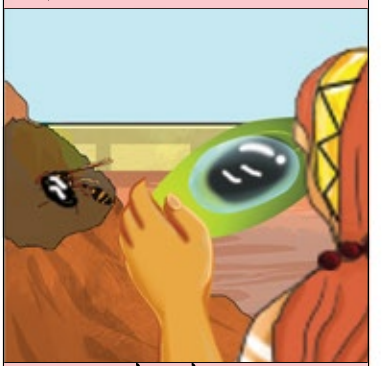

ऐसी रुचि और कौशल उनके लिए स्वाभाविक थे।

सन्यास लेने की रात्रि से लेकर सात रातों तक महाराजजी ने एक स्वप्न शृंखला देखी, जिसमें उनको भगवान शिवजी का दर्शन हुआ।

स्वप्नों में विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, योगासन और क्रियाओं को एक के बाद एक शिवजी ने कर दिखाया और इस तरह महाराजजी को योग-दीक्षा दी।

स्वाभाविक कुशलता और नियमित अभ्यास के कारण महाराजजी शीघ्र ही सभी योग विधियों में निपुण हो गए।

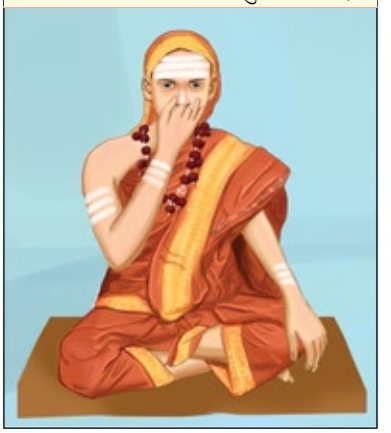

कुछ हफ्ते बाद जब ज्येष्ठ जगद्गुरुजी उनको नरसिंह मन्त्र की दीक्षा प्रदान कर रहे थे, तब महाराजजी ने अपने हृदय कमल में स्पष्ट रूप से भगवान नरसिंहजी की कल्पना करके उनकी मानस-पूजा की।

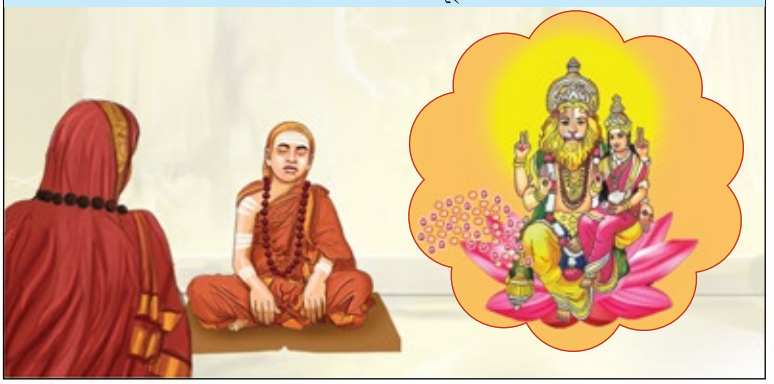

जब वे मन्त्र को दुहराने लगे, तब नरसिंहजी उनके हृदय कमल में स्पष्ट रूप से प्रकट हुए।

इस विशेष अनुभव के बाद अपनी सारी मनोवृत्ति, वचन और कर्म, वे नरसिंहजी को अर्पित करने लगे।

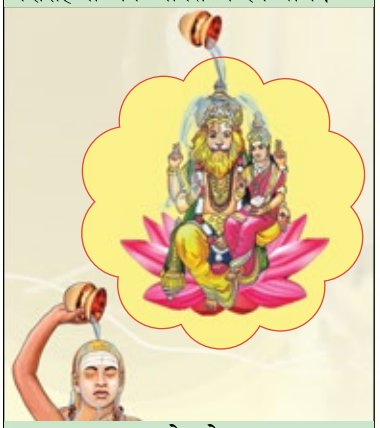

जब स्नान करते थे तब कल्पना करते थे जैसे कि वे नरसिंहजी को अभिषेक अर्पण कर रहे हों...

भोजन करते वक्त कल्पना करते थे जैसे कि वे अन्तःस्थित नरसिंहजी को खिला रहे हों...

पुस्तक पढते वक्त महसूस करते थे जैसे अन्दर से नरसिंहजी सुन रहे हों...

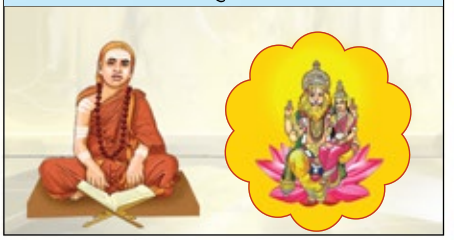

चलते समय कल्पना करते थे जैसे अन्दर विराजमान भगवान को अपने साथ सैर पर ले जा रहे हों...

कुछ ही महीनों में यह कर्मयोग उनके लिए स्वाभाविक हो गया।

महाराजजी के सोलहवें बरस में ज्येष्ठ जगद्गुरुजी ने उन्हे भगवान के दिव्य रूप पर ध्यान करने की एक विधि सिखाई।

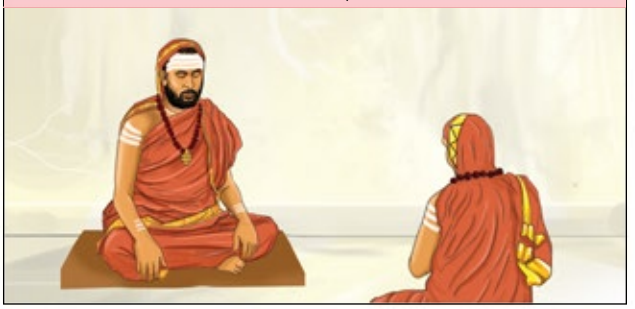

ध्यान की पहली बार से ही महाराजजी के मन में किसी भी प्रकार की चञ्चलता कभी उत्पन्न नहीं हुई। वे हर बार तुरंत अपने शरीर और परिवेश को भूल जाते थे और उन्हे समय बीतने का भान ही नहीं होता था।

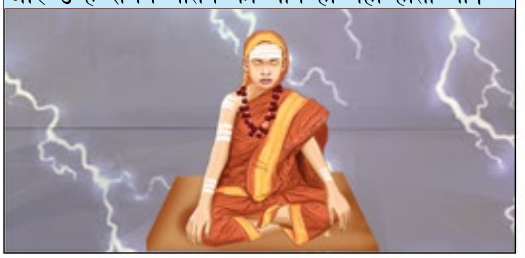

ईश्वर के विविध रूपों पर ध्यान करने में वे दक्ष थे।

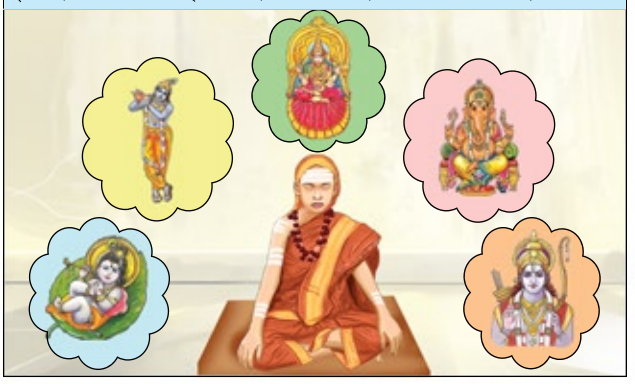

ध्यान के प्रक्रियाओं पर उन्होंने जाँच-परख किया और उनमें अतिनिपुणता पाई।

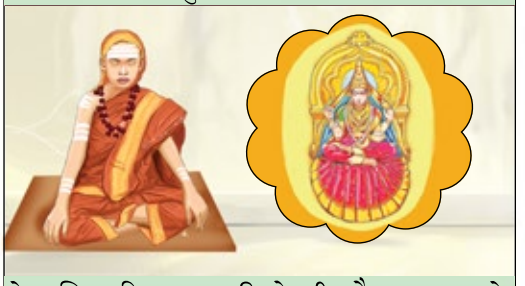

वे कल्पित दिव्य रूप की रोशनी और पृष्ठदृश्य के रंग व प्रकाश के स्तर को नियंत्रित कर पाते थे।

यद्यपि साधारणतः किसी रूप के एक भाग पर दृष्टि को केन्द्रित करने पर अन्य भाग अस्पष्ट हो जाते हैं, तथापि वे कल्पित दिव्य रूप को पूरी तरह से स्पष्टता से देख पाते थे।

भगवान के चरण जैसे किसी एक अंश पर अन्तर्दृष्टि को केन्द्रित कर पाते थे, पर वे तब भी यह नहीं भूलते थे कि वह अंश उस खास दिव्य रूप का ही अंग है।

अगर वे ध्यान करते समय मन्त्र जप को मन ही मन उच्चरित करना चाहते थे, तो उसके लिए मन की एकाग्रता के स्तर को नियंत्रित कर पाते थे।

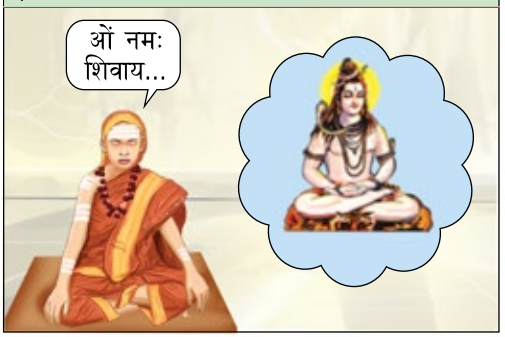

महाराजजी दिन में तीन बार ध्यान का अभ्यास करते थे। शाम को निकट के एक पहाड पर स्थित कालभैरव मन्दिर में जाकर साधना करते थे। इस तरह लगभग एक साल बीत गया।

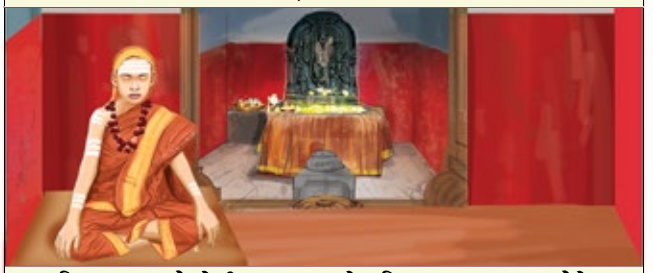

एक दिन शाम को देवी बालाम्बा के दिव्य रूप पर उन्होंने मन को केन्द्रित किया।

अचानक उनका मन देवी के चरण कमलों में तीव्रता से केन्द्रित हो गया और सजीव चरणों को देखने का अत्यद्भुत अनुभव उनको प्राप्त हुआ! देवी का न सिर्फ कल्पित रूप परन्तु साक्षात् देवी को ही देख रहे थे!

यह था सविकल्प समाधि* का उनका पहला अनुभव।

लगभग डेढ़ घंटे के बाद जब उन्होंने आँखें खोली, तब देवी बालाम्बा को प्रत्यक्ष अपने सामने मन्दिर में उपस्थित देखा!

उन्होंने अपने हाथ बढाकर देवी के चरण कमलों का स्पर्श किया।

इस अनुभव के बाद महाराजजी सहज रूप से भगवान के विविध दिव्य आकारों पर सविकल्प समाधि प्राप्त करने में सक्षम हो गए।

कुछ महीनों के बाद उनको कुंडलिनी योग का अनुभव हुआ।

सविकल्प समाधि में वे तुरन्त डूब गए।

एक शाम को महाराजजी ने अपने हृदय कमल में भगवान शिव की दिव्य आकृति पर ध्यान किया और लगभग डेढ़ घंटे तक सविकल्प समाधि में मग्न रहे।

आँखें खोलने पर शिवजी उनके अन्दर से उभरकर निकले और विशाल हुए। महाराजजी ने तब साक्षात् शिवजी को अपने सामने पाया!

*योग साधना में सगुण ध्यान की पराकाष्ठा जिसमें ध्यानित वस्तु स्पष्ट रूप से प्रकट होता है

शिवजी ने उनके सिर पर अपना हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और फिर अन्तर्धान हो गए।

महाराजजी को पुनः ध्यान करने की प्रेरणा हुई और इस बार शिवजी के आदिगुरु स्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिजी पर उन्होंने मन को केन्द्रित किया।

करीब एक घंटे के बाद आँखें खोलने पर उन्होंने अपने कंठ पर एक बडे काले सांप को कुंडलित पाया।

भुजंग को भूषण के रूप में धारण करने वाले पर उन्होंने ध्यान किया था, और अब उनपर ही एक भुजंग, भूषण बनकर पड़ा था!

भगवान के निर्देश अनुसार अगले दिन के शाम से महाराजजी ने निर्गुण परब्रह्म पर ध्यान का अभ्यास शुरू किया। सिर्फ पाँच ही दिनों में उन्होंने योग की पराकाष्ठा, निर्विकल्प समाधि को प्राप्त कर लिया।

अगले दो दिनों की अवधि में उन्होंने योग की इस उच्च स्थिति को कई बार पाया।

दूसरे दिन के शाम को, उत्तरोत्तर दो बार उनकी निर्विकल्प समाधि की अनुभूति हुई। जब उनकी आंखें खुली तब दो पंछी उनके कंधों पर बैठे थे।

महाराजजी जीवन्मुक्त* बन गए थे। तारीख था १२ दिसंबर सन १९३५। वे सिर्फ अठरह बरस के थे।

*जीवित ही संसार चक्र से मुक्त हुए परम ज्ञानी

महाराजजी किसी भी प्रकार के कर्म करने की आवश्यकता को पार कर चुके थे। इसके बावजूद, लोक-कल्याण के लिए उन्होंने अपनी सारी लौकिक ज़िम्मेदारियाँ खूब निभाई।

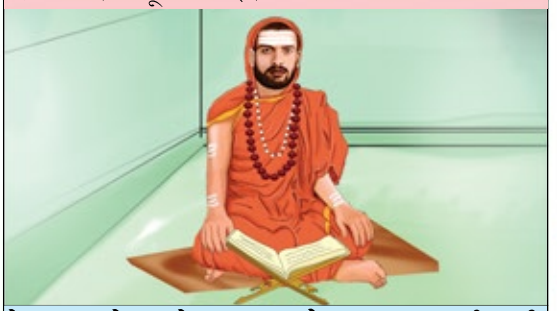

वे शास्त्र के गहरे अध्ययन में लग गए। शीघ्र ही शास्त्रों में, और विशेष रूप से वेदान्त, तर्क और योग शास्त्रों में उन्होंने निपुणता हासिल की।

परम भक्ति से उन्होंने अपने सद्गुरु महाराज की, खासकर उनकी अस्वस्थ अवस्था में, सेवा की।

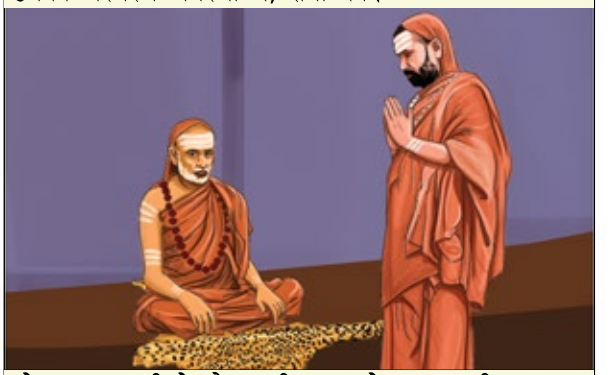

ज्येष्ठ जगद्गुरुजी ने तो अपनी तरफ से महाराजजी पर बहुत स्नेह और आदर दिखाया, यहाँ तक कि उनके ऊपर श्लोक भी रचाए।

भारत के राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसादजी शृंगेरी पधारे। देवी शारदांबा* के मन्दिर में राष्ट्रपति महोदय ने दोनों जगद्गुरुओं का दर्शन किया।

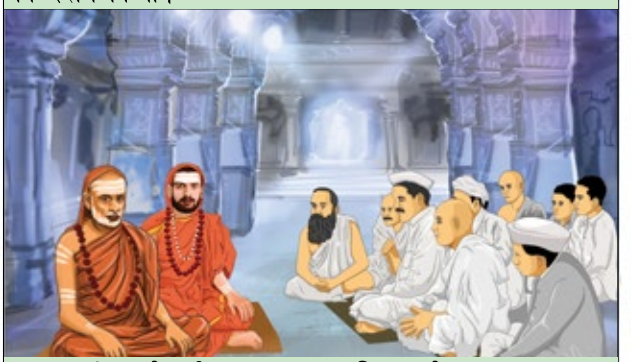

महाराजजी को देखकर राष्ट्रपति महोदय का हृदय आनंद-विभोर हुआ और उन्होंने उनकी बहुत सराहना की।

सितंबर सन १९५४ में ज्येष्ठ जगद्गुरु महाराज ने अपना देह त्याग दिया। इसके बाद महाराजजी शारदापीठ के पैंतीसवें पीठाधीश्वर बनकर उस पवित्र पद के उत्तरदायित्व संभालने लगे।

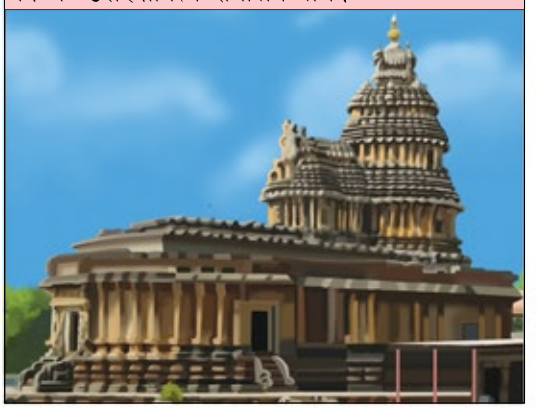

जन समुदाय और समाज के हित के लिए विविध क्षेत्रों में उन्होंने विकास योजनाओं की परिकल्पना की और व्यवस्थित ढंग से वे उनको सफलता तक ले चले।

प्रकृति संरक्षण में अत्यन्त निष्ठा रखने वाले महाराजजी, शृंगेरी के आसपास के कई पहाडों का वनरोपण किया। इस तरह भारत के पश्चिमी घाट के उस इलाके की पर्यावरण को समृद्ध बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

*शृङ्गेरी का मुख्य मंदिर है देवी शारदांबा का, जो सरस्वतीजी की दूसरी आकृति है

उन्होंने भारतवर्ष में अनेकों मन्दिरों की स्थापना की और कई पिछड़े गाँवों में भी पूजा पद्धति को पुनर्जीवित किया।

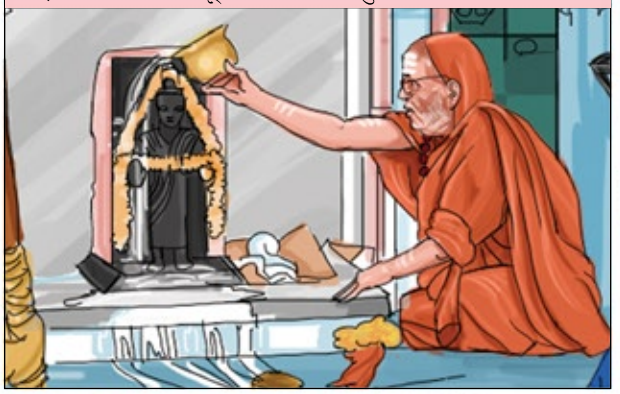

तीर्थयात्रियों की सुविधा के लिए शृंगेरी में अतिथि-गृहों का निर्माण, और देश के विविध स्थानों पर धर्मशालाएँ और विवाह मण्डपों की स्थापना की।

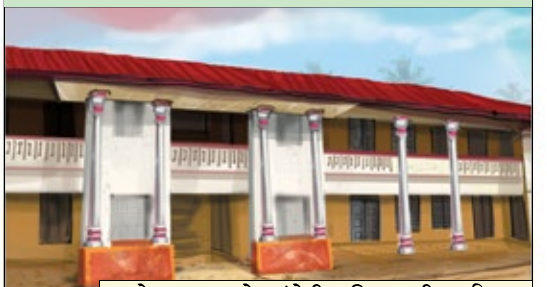

उनके प्रयास से शृंगेरी की पहली नारियल की वृक्षवाटिकाएँ बनीं। उन्होंने कृषि के क्षेत्र में कई नवीनताओं को लागू किया।

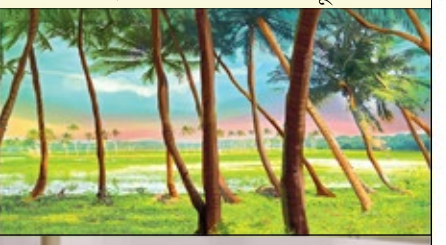

वैदिक अध्ययन के उद्धार के लिए उन्होंने कई वेद-पाठशालाओं की स्थापना की। छात्रों की भलाई और पढाई का वे स्वयं ध्यान रखते थे।

उन्होने शृंगेरी के पहले कन्या-विद्यालय की स्थापना की और बेंगलूरु में ज्ञानोदय विद्यालय का भी निर्माण किया। वे केरल के कालडी में निर्मित श्री शंकर महाविद्यालय के भी पोषक बने। ग्रन्थालयों और अनुसंधान केन्द्रों की भी उन्होंने स्थापना की।

शृंगेरी और उसके आसपास के इलाकों के लोगों के लिए इसके पूर्व कोई भी स्वास्थ्य सुविधा नहीं थी। महाराजजी ने इस कमी को दूर करने हेतु मल्टी-स्पेशयालिटी शारदा धनवन्तरी धर्मार्थ अस्पताल का निर्माण सन १९८० के दशक में किया।

शृंगेरी तब कोई शहरी इलाका नहीं था। फिर भी महाराजजी ने अस्पताल के लिए नवीनतम चिकित्सा और अनुसन्धान उपकरणों का संपादन किया और श्रेष्ठतम चिकित्सकों को भी नियुक्त किया।

किसी भी प्रकार का अपव्यय महाराजजी को स्वीकार नहीं था। एक बार एक जगह पर उन्होंने देखा कि ऊपरी टंकी से पानी बेकार नीचे बहकर जा रहा है।

उन्होंने एक नारियल के पौधे को वहाँ लगवाने की व्यवस्था की, ताकि बेकार जाने वाले पानी का सदुपयोग हो जाए।

तीन दशकों के अन्तर्गत महाराजजी ने भारत का तीन बार दौरा किया। उन्होंने गाँव-गाँव की यात्रा की और लाखों लोगों के जीवन को विभिन्न प्रकारों में धन्य कर दिया।

कुछ जगहों में उनके रहने की व्यवस्था महलों में हुई...

...तो कई और स्थानों पर लोग उनके रहने की व्यवस्था न्यूनतम स्तर पर ही कर सके। परन्तु ये सब बातें महाराजजी के लिए कोई भी महत्त्व नहीं रखती थीं।

सौ सालों के बाद चेन्नई और हैदराबाद का दौरा करने वाले शृंगेरी जगद्गुरु शंकराचार्य तो महाराजजी ही थे, और शृंगेरी जगद्गुरुओं में ये सर्वप्रथम थे जिन्होंने मुम्बई, दिल्ली और कोलकत्ता की यात्रा की।

सन १९६७ में इन्होने नेपाल की यात्रा की, और वहाँ लोगों ने बडे आदर और स्नेह के साथ उनका स्वागत किया। आद्य शंकराचार्यजी के बाद नेपाल का दौरा करने वाले पहले जगद्गुरु शंकराचार्य महाराजजी ही थे।

नेपाल की सरकार ने इस ऐतिहासिक दौरे को अपूर्व मान्यता दी और इस वृत्तान्त को एक फलक में लिखवाकर उसे पशुपतिनाथजी के मन्दिर में स्थापित कर दिया।

जब महाराजजी सन १९६७ में पहली बार वाराणसी गए, तब सबसे वरिष्ठ विद्वानों से भरी सभा में उन्होंने शास्त्रों का वाक्यार्थ किया। वाराणसी में आगमन के वक्त वे पण्डितों के लिए बस अजनबी ही थे। पर उनके मुँह से शास्त्रार्थ सुनने के बाद, महाराजजी के अपार ज्ञान और कुशाग्र-बुद्धि को देख सभी विद्वान चकाचौंध रह गए।

अमरीकी राजदूत श्री एल्सवर्त बंकर ने सन १९६० में महाराजजी का दर्शन किया। उन्होंने महाराजजी से विश्व की समस्याओं के बारे में कई प्रश्न पूछे।

समस्याओं के मूल तक पहुँचकर व्यावहारिक दृष्टिकोण से समाधानों को निकालने की क्षमता रखने वाले महाराजजी के साथ संवाद करने के बाद श्री बंकर उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने अपने आप को धन्य माना।

महाराजजी ने चतुराम्नाय* सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें आद्य शंकराचार्यजी के बाद इतिहास में पहली बार चारों पीठाधीश्वरों की एक स्थान पर मुलाकात हुई। उस अवसर पर चारों जगद्गुरुओं ने मिलकर विश्वशान्ति के लिए संयुक्त संदेश दिया।

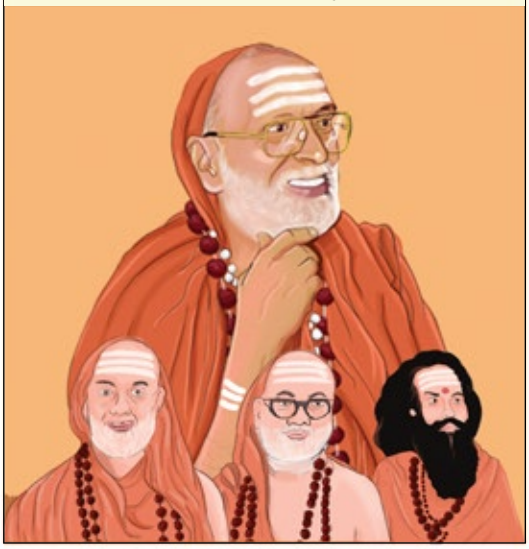

*भारत के चार कोनों में आद्य शंकराचार्यजी द्वारा स्थापित चार पीठ “चतुराम्नाय पीठ” कहलाते हैं

शासनाध्यक्ष, मंत्रीगण, राजा-महाराजा और अन्य कई उच्च-पदधारी, महाराजजी का बहुत सम्मान करते थे और अनेकानेक बार उनके आशीर्वाद लेने जाते थे।

आर्थिक स्थिति, जाति, मत या धर्म महाराजजी के लिए कुछ महत्त्व नहीं रखते थे। हर जगह उनके दर्शन के लिए लोग बड़ी मात्रा में आते थे। अपने अपने जीवन की कठिनाइयों से उभरने के लिए उनसे सलाह और आशीर्वाद भी माँगते थे और अपनी खुशियों को उनके साथ बाँटते भी थे।

एक मुसलमान सज्जन के सन्तान नहीं थे और इस मनोकामना की पूर्ति के लिए वह आशीर्वाद लेने महाराजजी के दर्शन के लिए आया। उसके कुछ कहने से पहले ही...

शीघ्र ही उसे पुत्र-प्राप्ति हुई। वह महाराजजी को शुभ समाचार देने दूसरी बार शृंगेरी आया।

महाराजजी सदैव यही चाहते थे कि हर कोई अपने-अपने धर्म का श्रद्धापूर्वक पालन करें।

*भक्तजन द्वारा जगद्गुरुजी या देवी शारदांबा के पवित्र पादुकाओं की पूजा करने की पद्धति

एक बार ऐसा हुआ कि एक लंगड़ा आदमी दर्शन के लिए आ रहा था। भीड बहुत भारी थी और वह जल्दी से नहीं चल पा रहा था।

महाराजजी ने उसको दूर से ही देख लिया।

वे तुरंत आसन से उठे और सीढियों से उतरकर उसके पास गए। महाराजजी ने बडी कोमलता से उससे बात की और प्रसाद व आशीर्वाद दिए।

विकलांगों पर उनका विशेष ध्यान रहता था।

एक प्रधान मार्ग से गुज़रते वक्त एक बार महाराजजी की दृष्टि एक पलटी हुई गाड़ी पर पडी। कई गाड़ियाँ वहाँ से बिना रुके गुज़र रही थीं, पर महाराजजी ने तुरंत अपनी गाड़ी को रोकने का आदेश दिया, और दुर्घटना स्थल पर जल्दी पहुँच गए।

उन्होंने गाड़ी के अन्दर एक आघात आदमी को पाया, जो मूर्छित था पर जीवित था। तुरंत महाराजजी ने श्रीमठ के एक गाड़ी को एम्बुलेंस लाने के लिए भेज दिया।

परीक्षण के बाद उन्होंने निर्णय लिया कि पलटी हुई गाड़ी को सीधा करने से ही आदमी को बाहर निकाला जा सकता है, और उसको चोट पहुँचाए बिना काम हो सकता है। दूसरों के साथ उन्होंने भी परिश्रम किया और कुछ ही देर में गाड़ी सीधी खडी हो गई।

अच्छी तरह से पुनः पड़ताल करने के बाद उन्हे यह स्पष्ट हुआ कि व्यक्ति को सुरक्षित रूप से बाहर निकाला जा सकता है और एम्बुलेंस के लिए प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। सावधानी से उन्होंने आदमी को बाहर निकाला।

उन्होंने आदमी को एक गाड़ी में एम्बुलेंस के आने की अपेक्षित दिशा में भेज दिया।

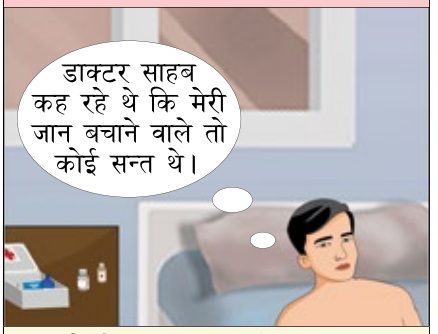

शीघ्रगति किन्तु सावधानी से की गई उनकी कार्रवाई के कारण उस विपत्ति-ग्रस्त व्यक्ति को जल्द से जल्द चिकित्सा मिल गई। वह बच गया और स्वस्थ भी हो गया।

एक प्रदेश में तीन सालों से अनावृष्टि फैली हुई थी। महाराजजी उस प्रदेश की यात्रा कर रहे थे।

एक बार एक विशाल खुली जगह पर एक बडे समारोह का आयोजन हुआ था, और भक्तजन बड़ी संख्या में इकट्ठे हुए थे। तब काले घने बादल आसमान में छा गए और भारी वर्षा आने का भय सब में उत्पन्न हो गया। उपस्थित जनसमूह में कई लोगों ने महाराजजी को कर-जोड आसमान की ओर दृष्टि मोडते हुए देखा। कुछ ही क्षणों में...

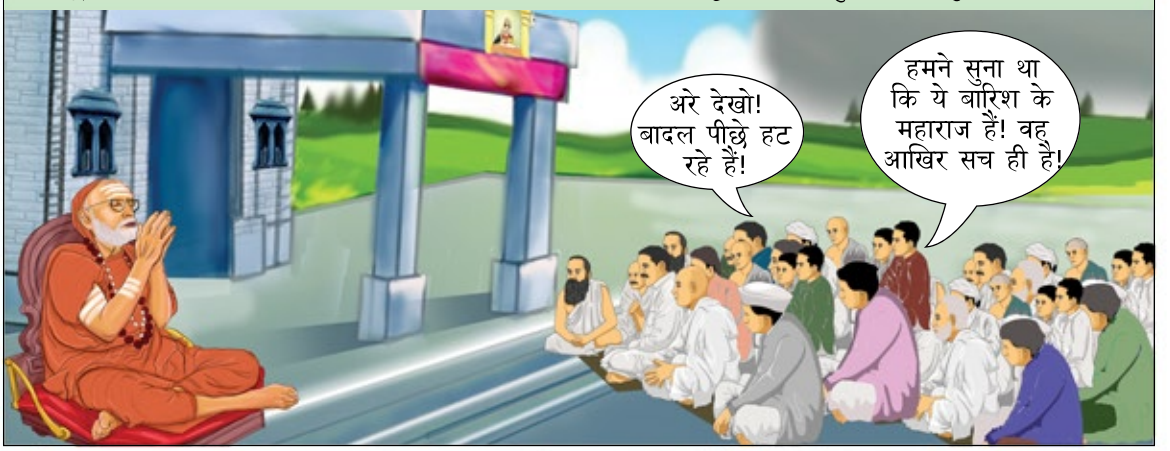

माना जाता था कि पारंपरिक आध्यात्मिक अभ्यास, केवल आश्रम-वासियों के लिए हि साध्य है। परन्तु अपने हज़ारों भाषणों के द्वारा महाराजजी ने उसको जन साधारण के बस की बात बना दी।

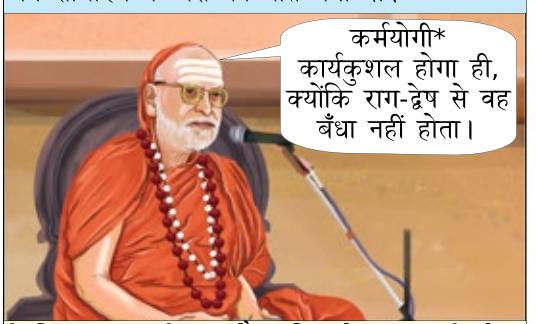

वे हिंदी, कन्नड, तेलुगु और तमिल में सहजता से बोल सकते थे। अतः वे भारत के सभी प्रान्तों के लोगों के साथ प्रत्यक्ष रूप से संवाद कर सकते थे।

सन १९७० के आस-पास का समय था। महाराजजी एक सभामण्डप में अनुग्रह भाषण देने वाले थे।

उन्होंने देख लिया कि बाहर लगाए गए यंत्रों को वियोजित करना आसान ही होगा। उन्होंने आयोजकों को ऐसे कर देने का निर्देश दिया।

*कर्मयोग एक आध्यात्मिक साधनाविशेष है जिसमें साधक अपना कर्त्तव्य बिना अनुराग के और भगवान के लिए करता है

यह था वह ज़माना जब ध्वनि प्रदूषण के बारे में भारत में जागरूकता बहुत ही कम थी।

भारत की समृद्धि और शान्ति के लिए उन्होंने कई स्थानों पर याग-यज्ञ करवाए।

भारत-भ्रमण के समय कई बार सेना को संबोधित करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया।

युद्ध के समय श्रीमठ की तरफ से उन्होंने राष्ट्रीय रक्षा निधि को अत्यधिक मात्रा में दान दिया।

वे तीव्र देशभक्त थे।

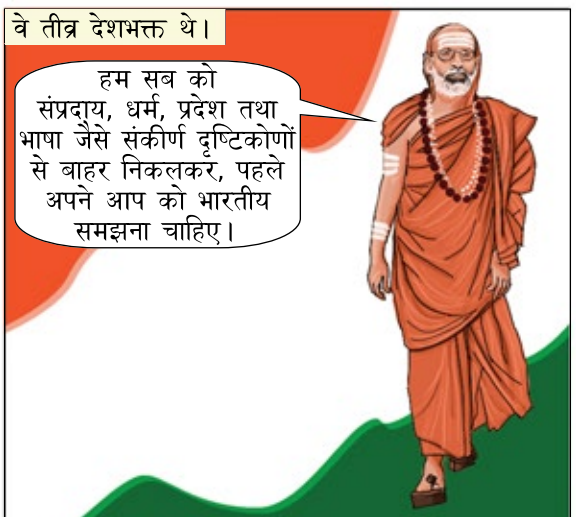

जब वे भारत के स्वतन्त्रता संग्रामियों की वीर गाथाओं को पढते थे, तब उनकी आँखों में आँसू भर आते थे।

अहिंसा के सिद्धान्त और उसकी अनुसंधान पर वे सदा अटल रहे। गोहत्या के मुद्दे पर जब देश में हिंसा फैल रही थी, तब...

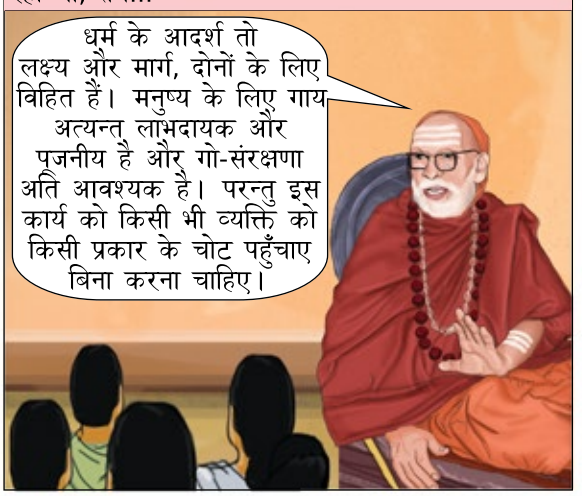

वे सिर्फ बोलते नहीं थे, खूब करते थे। वे शृंगेरी में एक गोशाला संभालते थे जिसमें लगभग सौ गायों का पालन-पोषण बड़े प्यार से करते थे।

महाराजजी न सिर्फ परम्परागत विद्याओं में, किन्तु अन्य विविध विषयों में रुचि लेते थे, जैसे कि कृषि, उद्यानकृषि, इंजीनियरिंग, फोटोग्राफी, इलेक्ट्रानिक्स और प्रौद्योगिक क्षेत्र।

विभिन्न प्रकार के धर्म संस्थानों के नेतृत्व करने वाले आचार्य, महाराजजी को बड़े आदर और स्नेह से देखते थे और उनसे अक्सर सलाह और आशीर्वाद लेते थे।

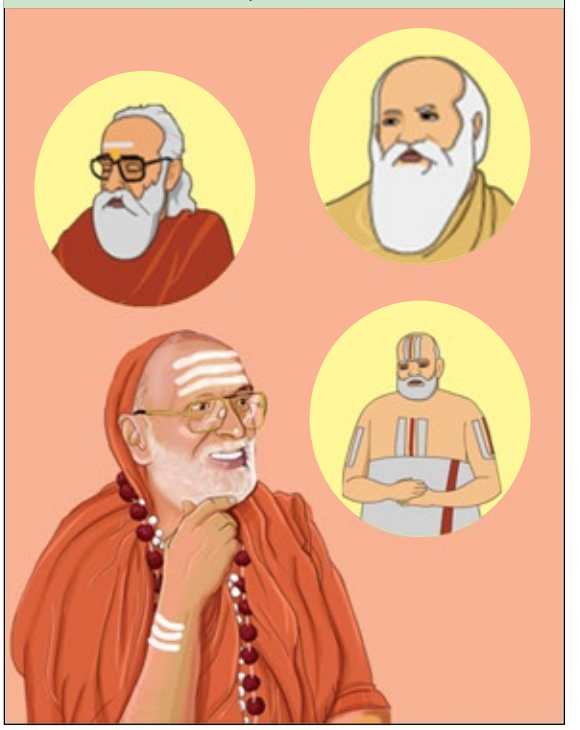

बड़े उदार दिल वाले महाराजजी सभी को उनके अपने अपने सद्गुणों के लिए सम्मान देते थे और दूसरों पर अपनी विचारधारा को थोपते नहीं थे। सर्वजन के प्रति उनके विशुद्ध स्नेह ने सभी प्रकार के लोगों को उनके प्रति आकर्षित किया।

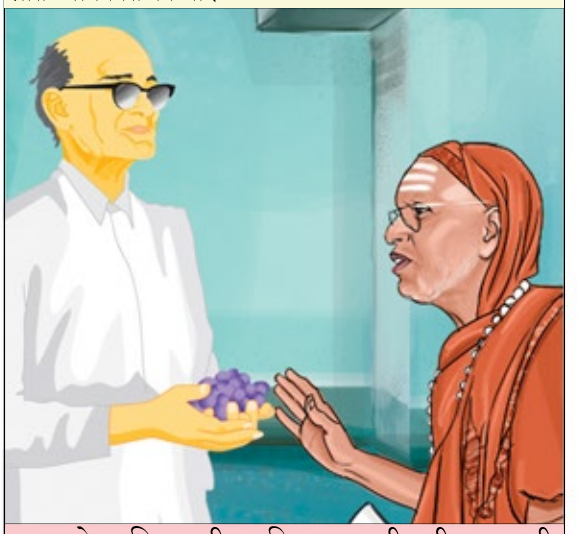

भारत के प्रतिभाशाली आविष्कारक जी. डी. नायडूजी, भगवान को नहीं मानते थे, परन्तु महाराजजी को बड़े आदर देते थे। यहाँ तक कि अपने प्रशिक्षण संस्थान और सभामण्डप को उन्होंने महाराजजी का नाम दिया।

जोशीले स्वभाव वाले महाराजजी को एक बात बहुत भाती थी — तैरना। तैरने में वे अत्यन्त निपुण थे और किसी भी नदी या समुद्र को छोड़ते नहीं थे!

वे किसी भी कार्य को हाथ में लेते थे तो उसको बडी श्रद्धा के साथ संपूर्ण करते थे। शृंगेरी में तुङ्गा नदी पर पुल-निर्माण की उनकी योजना बनी। इसके लिए उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध एक संस्था के उच्च अधिकारियों को चर्चा के लिए आमन्त्रित किया।

महाराजजी ने विश्व के कई पुलों के चित्रों के साथ उनके खास विवरणों को एक पुस्तक में इकट्ठा किया था। इन सब के बारे में उन अधिकारियों से चर्चा करते समय उन्होंने शृंगेरी के लिए उत्तम पुल-योजना के बारे में विचार-विमर्श किया।

प्रौद्योगिक विषयों पर महाराजजी के ज्ञान से वरिष्ठ अधिकारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे जाते समय...

नागरिक के कर्त्तव्यों को निभाने में महाराजजी सदैव अग्रसर थे। एक बार एक बड़ा पेड़ सड़क पर गिर गया था और सभी वाहनों को घूमकर जाना पड़ रहा था। जब महाराजजी की गाड़ी वहाँ से गुज़री, तब...

श्रीमठ के कर्मचारियों के साथ महाराजजी ने भी बल लगाया और सड़क से बाधे को हटा दिया।

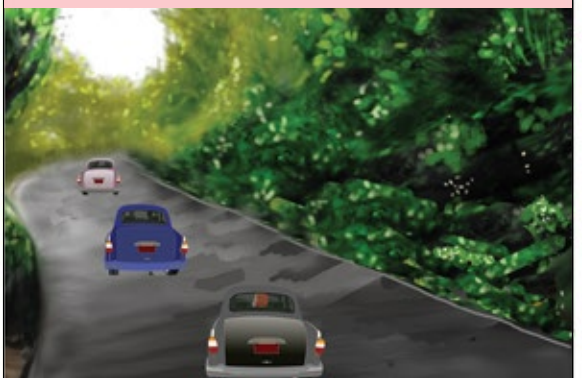

इस तरह उस सार्वजनिक असुविधा को हटाने के बाद ही वे फिर से रवाना हुए।

दूसरों की सुविधा के लिए महाराजजी अपने आप की सुविधा को त्याग करने पर ज़रा भी हिचकिचाते नहीं थे। एक बार उत्तर भारत से एक वृद्ध महिला शृंगेरी आई।

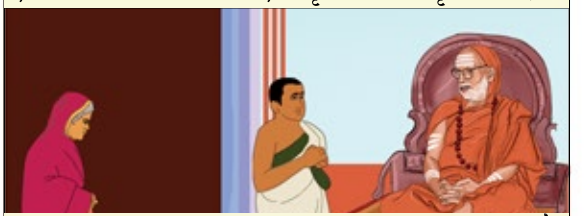

वह महाराजजी के पुण्य दर्शन के लिए ही आई थी और सिर्फ दो दिन रुकने वाली थी। बहुत दिनों की बचत के सहारे ही वह इस यात्रा पर आ सकी थी।

बहुत व्यस्त होने के बावजूद महाराजजी ने उस एक भक्त की संतुष्टि के लिए अपने कार्यक्रमों को दो दिनों के लिए बदल लिया और अपने सार्वजनिक दर्शन देने की अवधि को ज़्यादा से ज़्यादा बढ़ा दिया।

उनकी दया सभी प्राणियों के प्रति थी। एक भक्त ने एक बार जड़ी-बूटियों वाली एक खास लेप लाया। निजी तौर पर उसने सिद्ध कर लिया था कि वह लेप खुले घावों को ठीक करने में बड़ा सक्षम था।

कुछ दिन बाद महाराजजी ने एक आवारे कुत्ते को रास्ते पर देखा, जो बहुत बुरी घाव से पीड़ित था। किसी प्रकार के हिचकिचाहट के बिना, तुरंत...

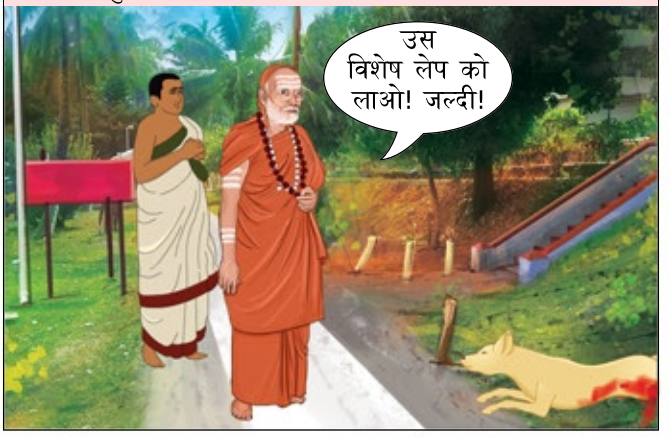

पीड़ित कुत्ते पर मरहम लगाने की प्रक्रिया को उन्होंने कुछ दिनों के लिए जारी रखा। घाव तो शीघ्र ही ठीक हो गया और कुत्ता स्वस्थ हो गया।

एक बार एक भक्त ने आकर महाराजजी के सामने अपनी एक समस्या प्रस्तुत की। तब दोनों के बीच बडा रोचक और व्यवहार के लिए उपयोगी संभाषण हुआ।

"उदाहरण के लिए समझो कि कोई तुमको गाली दे रहा है और परिणामस्वरूप तुम्हारा गुस्सा उत्तेजित हो गया है। तब तुम ऐसा सोच सकते हो..."

मेरा असली दुश्मन यह व्यक्ति नहीं, मेरा क्रोध है। यह गुस्सा मेरे मन को उत्तेजित करता है, विवेक से सोचने की क्षमता को दबा देता है, बुरे कर्म करने को उकसाता है, मन की शान्ति को मिटा देता है और मेरे स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुँचाता है।

अगर मैंने गुस्सा छोड दिया तो क्या लोग मेरी नम्रता का फायदा नहीं उठाएँगे?

अगर आवश्यकता पड़े तो बिना अपने मन में हलचल पैदा किए, क्रोध का आभास दिखा सकते हो। परन्तु बदला लेने जैसे विचारों को तुम अपने अन्दर मत रखो।

इसके बाद लोगों के साथ बर्ताव करने के तरीके के बारे में महाराजजी ने एक अहम आध्यात्मिक सुझाव दिया।

कोई तुम्हारी अनुचित आलोचना करें, तो ऐसा सोचने में तुम्हारा फायदा होगा - शास्त्रों में माना जाता है कि दूसरों को खुशी देना ईश्वर की पूजा है। मेरी आलोचना करने से इस आदमी को कुछ सुख मिल रहा है, तो इससे मेरी ईश्वर-पूजा आसानी से हो रही है!

फिर अपने हास्य स्वभाव और व्यवहार-कुशलता के अनुरूप उन्होंने कहा...

दूसरों को खुशी देने वाली इस बात का हम दुरुपयोग न करें! कोई गलत काम करने वाले आदमी की मदद करके हम उसको खुशी देने वाले तो बन ही जाएँगे, परन्तु यह ईश्वर की पूजा तो नहीं बन सकती!

कई बार होता था कि महाराजजी के आशीर्वाद या संकल्प से ही लोगों की कठिनाइयाँ दूर हो जाती थीं। एक भक्त की माँ बीमार पड गई और डाक्टरों ने जाँच करने के बाद बुरी सूचना दी।

आपकी माँ को रीढ़ का कैंसर हुआ है, और जान बचने की संभावना बहुत कम है।

भाग्यवश, तब पास के नगर में ही महाराजजी का शिविर चल रहा था। भक्त ने तुरंत वहाँ जाकर उनको इस दुर्दशा के बारे में बताया।

तुम्हारी माँ को कैंसर नहीं है। फिर से जाँच कर लो। घबराने की कोई ज़रूरत नहीं।

भक्त ने फिर से सब जाँच करवाया। नए जाँचों के नतीजे जब आए तब डाक्टर आश्चर्यचकित रह गए और भक्त, भावविभोर।

एक मन्दिर में एक बार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि वहाँ के पुजारीजी को अचानक ही अपना काम छोडना पड़ा। उनको कहीं नौकरी नहीं मिली, और उनकी आर्थिक स्थिति बिगडती गई। उन्होंने महाराजजी को अपनी समस्या के बारे में बताया।

महाराजजी के आशीर्वाद के कारण अनपेक्षित दिशाओं से धनराशी के स्वैच्छिक दान पुजारीजी को मिलने लगे और उनके आश्चर्य और आनंद की सीमा नहीं रही। इस तरह कुछ ही समय में उनका अपना मंदिर खड़ा हो गया!

कई बार ऐसा होता था कि महाराजजी भक्तों के लिए सरल प्रायश्चित्त कर्म या मन्त्र-जप की सलाह देकर आशीर्वाद देते थे। एक बार आँखों में आँसू भरा एक भक्त आया।

लड़के ने उपदेश का श्रद्धापूर्वक पालन किया। डाक्टरों ने आश्चर्य से देखा कि लड़के की हालत धीरे-धीरे सुधरने लगी।

एक बार एक युवक ने महाराजजी को पत्र लिखा, कि उसने परीक्षा के लिए ठीक तरह से तैयारी नहीं की पर वह उत्तीर्ण होने के लिए महाराजजी के आशीर्वाद की अपेक्षा में था। महाराजजी ने पहले मज़ाक में कहा...

उन्होंने फिर समझाया कि नज़रिया कैसी होनी चाहिए...

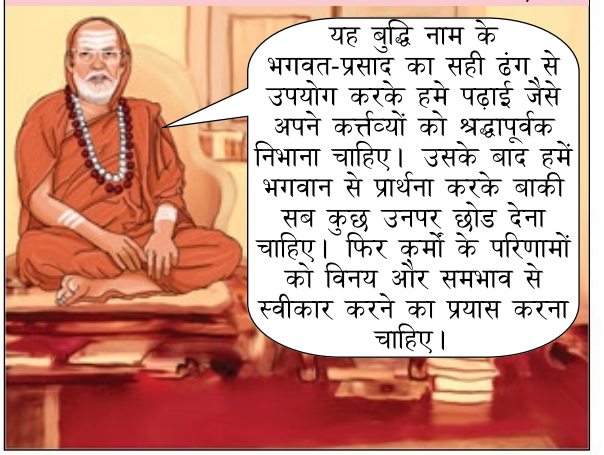

उनके स्वास्थ्य की स्थिति और श्रीमठ के अन्य कार्यक्रम कैसे भी हों, महाराजजी ने अपने धार्मिक कर्त्तव्यों को एक दिन के लिए भी नहीं छोडा।

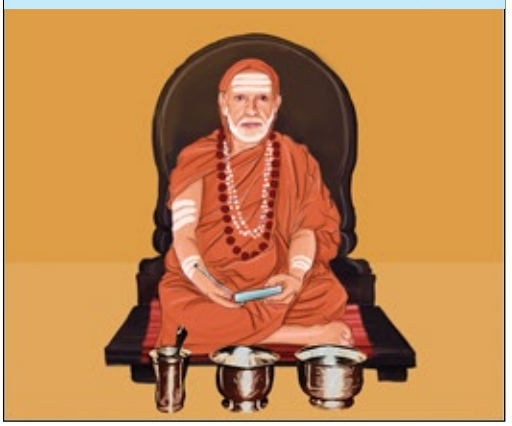

हर शाम को उनकी हाथों से की जाने वाली पूजा को देखने के लिए लोग बडी संख्या में उत्सुकता से आते थे। एक बार विभिन्न रंगों के सुन्दर गुलाब के फूल पूजा के लिए रख दिए गए थे।

उन्होंने हमेशा की तरह फूलों को एक एक करके भगवान को अर्पित किया।

जब अर्चना संपूर्ण हुई तब एक खास रंग के गुलाब एक बहुत ही खूबसूरत माला के रूप में भगवान के मंडप में सज गए!

ऐसे परम सौंदर्य दृश्य को देखते ही आनंदित होकर सभी लोगों ने सहज रूप से तालियाँ बजाना शुरू कर दिया, इस बात को भूलकर कि ऐसा करना नियम के अनुरूप नहीं था!

एक बार पूजा में जब भोग चढाने का समय आया...

वे तब तक इंतज़ार करते रहे जब तक भोग पर्याप्त मात्रा में ठंडा नहीं हुआ। उसके बाद ही उन्होंने भोग चढाया। हर दिन वे इसी श्रद्धा और भक्तिभाव से पूजा करते थे।

एक अवसर पर महाराजजी ने मूर्ति पूजा के महत्त्व को समझाने के लिए एक दिलचस्प कहानी सुनाई।

एक साधारण मिट्टी के टुकड़े के इतने परिवर्तन? और तुम जैसे साधारण आदमी के कहने पर यह सब होता है? नामुमकिन!

हम सामान्य जन एक आम मानव को मंत्री बनाते हैं, उनको विशेष तरह के अधिकार भी प्रदान करते हैं और पुनः उसे आम बना देते हैं। उसी तरह, भगवान को एक मिट्टी की मूर्ति को पावन करने और बाद में उससे अपने अस्तित्व निकालने के लिए भक्त की याचना काफी है।

पूजा के समय मूर्ति कुछ स्वीकार नहीं करती। तो तुम क्यों इतनी सारी चीज़ें उसको अर्पित करते हो?

जब एक चित्र एक साधारण मनुष्य का प्रतिनिधि बन सकता है, तो क्यों न एक मूर्ति भगवान का प्रतिनिधि बनें? भक्त को मूर्ति में मिट्टी नहीं, बल्कि भगवान का जीवित अंश महसूस होता है। वह भगवान को भोग, वगैरह बड़े प्रेम से अर्पित करता है और मानता है कि भगवान ने उन सब को स्वीकार कर लिया है।

जहाँ भी हवा का दबाव कम पड़ता है, वहाँ हवा घुस जाता है। वैसे ही, भगवान सर्वव्यापी हैं, परन्तु जिन मूर्तियों में उनकी पूजा होती है, उनमें विशेष रूप से उपस्थित हो जाते हैं। वे हमसे कुछ नहीं चाहते, पर जो भी हम प्रेम से अर्पित करते हैं, वे उसे स्वीकार करते हैं।

एकदा जब एक युवा वकील शृंगेरी आया तो एक बडी रोचक घटना घटी। वह वहाँ के एक शिष्य के पास गया।

मैं यहाँ पर्यटन करने के लिए आया हूँ। मैं नास्तिक हूँ पर सिर्फ देखना चाहता हूँ कि ये मठाधीश कैसे दिखते हैं। क्या मैं उन्हे देख सकता हूँ? पर मैं उनको नमन नहीं करूँगा।

महाराजजी कुछ ही पलों में दर्शन देने वाले हैं। कोई भी अन्दर जा सकता है। आप अन्दर जाएँगे या नहीं, यह आप ही तय कर लीजिए।

थोड़ी ही देर में दरवाज़ा खुला और वह वकील कुछ भक्तों के पीछे अन्दर चला गया।

महाराजजी को देखते ही उसने दंडवत प्रणाम किया और ऐसे ही ज़मीन पर काफी देर तक पड़ा रहा। अन्ततः...

अब तुम उठ सकते हो।

बाहर आने के बाद उसने उसी शिष्य को देखा जिनके साथ उसकी बातचीत पहले हुई थी।

न केवल उनके पास आने वालों को, पर कभी-कभी अजनबियों को भी महाराजजी का अनुग्रह प्राप्त हो जाता था। एक बार एक बच्चे को बहुत ही गंभीर हालत में एक प्रसिद्ध डाक्टर के यहाँ ले जाया गया।

बच्चे के माँ-बाप के बार बार मदद की भीख माँगने पर अन्ततः डाक्टर ने बच्चे को पास के अस्पताल में दाखिल करने का सुझाव दिया।

उस रात को डाक्टर ने एक सपना देखा जिसमें एक अनजान सन्यासी दिखाई पड़े...

जब डाक्टर नींद से उठे, तब उसको लगा कि सपने में उल्लेख किए गए दवाइयाँ बच्चे के लिए काम आ सकती हैं। उन्होंने तुरंत अस्पताल जाकर बच्चे को दवाइयाँ दे दी।

बच्चे की हालत में सुधार आने लगा और जल्दी ही वह तन्दुरुस्त भी हो गया! डाक्टर साहब बहुत ही खुश हो गए।

कुछ दिनों के बाद सपने में फिर से डाक्टर साहब को उसी सन्यासी का दर्शन हुआ।

डाक्टर शृंगेरी गए, तो...

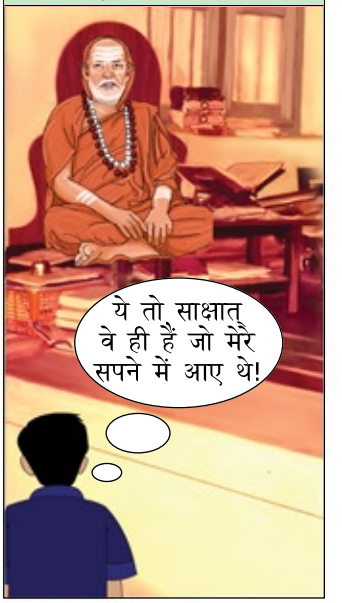

महाराजजी आध्यात्मिक साधकों को प्राथमिकता देते थे। एक बार विदेश से एक श्रद्धालु साधक वेदान्त के बारे में कुछ संदेह महाराजजी से पूछने के लिए शृंगेरी आया।

तब शिष्य-स्वीकार समारोह* के लिए तैयारियाँ खूबी से चल रही थीं और ऐसा प्रतीत हुआ कि साधक के लिए महाराजजी का समय निकालना नामुमकिन होगा। परन्तु उन्होंने समय निकाला।

अनुवादक की सहायता से महाराजजी ने उस साधक के हर एक संदेह को दूर किया।

जब उनसे पूछा गया कि वे कैसे इतना समय निकाल सकते थे, तब उन्होंने कहा...

महाराजजी कुछ चुने हुए शिष्यों को वेदान्त पाठ पढ़ाते थे। कक्षा पारंपरिक शैली में होने के कारण महाराजजी पाठ को संस्कृत में ही पढ़ाते थे। एक बार उन्होंने एक वृद्ध दम्पति को कक्षा में बैठकर सुनने की अनुमति दी।

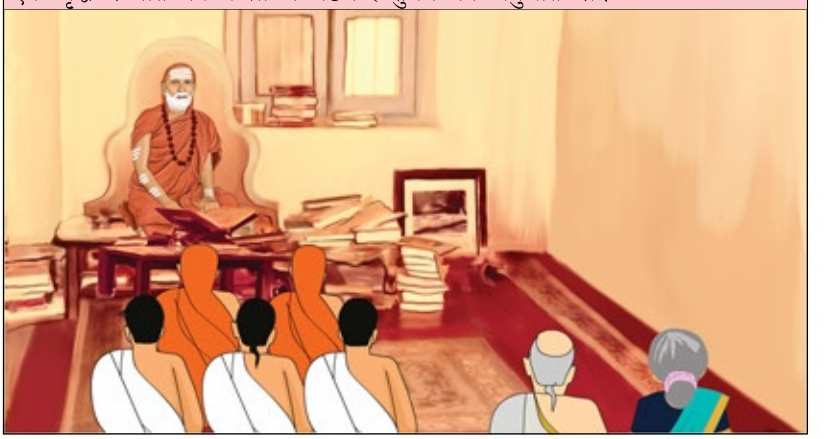

पहले दिन के पाठ के बाद वृद्ध महिला ने अपनी दुविधा को महाराजजी से प्रस्तुत किया...

अगले दिन की कक्षा में...

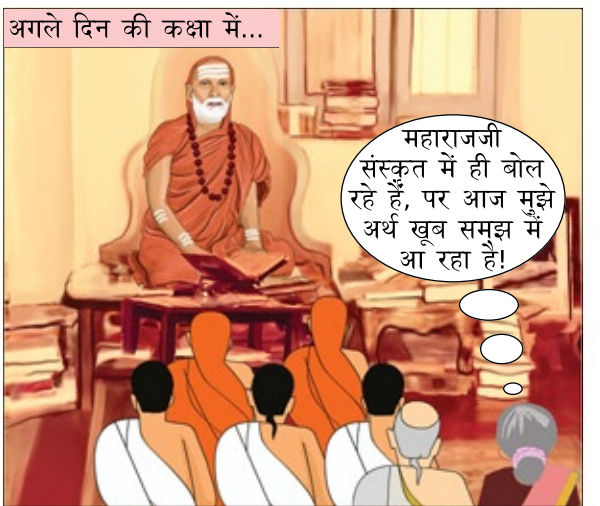

महाराजजी का आशीर्वाद इतना प्रभावशाली था कि तब से लेकर हर पाठ को वृद्ध महिला समझ जाती थी। इतना ही नहीं, पहले दिन के पाठ में सिखाए गए विषय भी अपने आप उनके समझ में आ गए।

*समारोह जिसमें जगद्गुरु अपने चुने हुए शिष्य को सन्यास दीक्षा देकर उनको अपना उत्तराधिकारी नियमित करते हैं

महाराजजी एक बार शृंगेरी से बेंगलुरु के लिए रवाना होने ही वाले थे। तब ऋषिकेश से एक ब्रह्मचारी साधक आ पहुँचा। उसने महाराजजी के एक शिष्य से बातचीत की।

शिष्य जाकर महाराजजी से साधक की बात बताई। महाराजजी ने कहा कि तब फुरसत न होने के कारण वह बेंगलूरु में आकर उनसे मिल सकता है।

कुछ ही समय में महाराजजी यात्रा शुरू करने के लिए बाहर आए। जब उन्होंने उस ब्रह्मचारी को देखा...

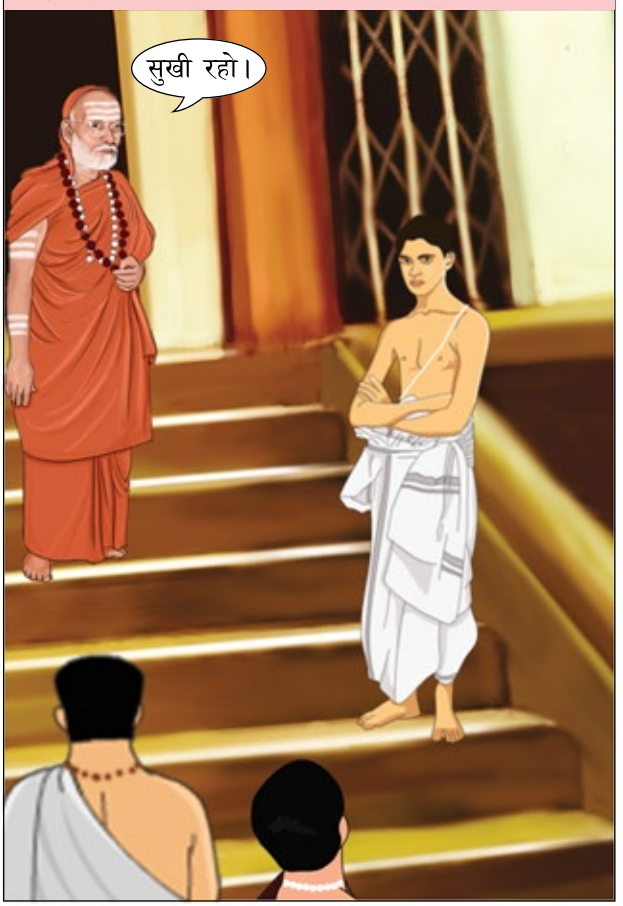

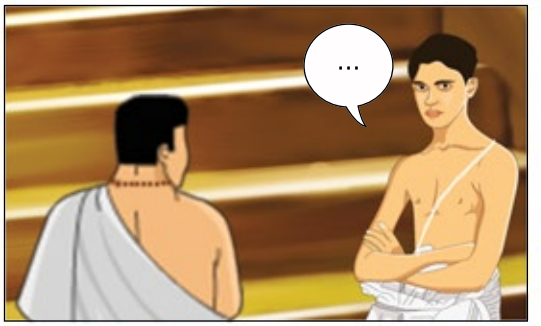

गाड़ी में बैठने के बाद...

यह अवश्य नहीं था कि महाराजजी पाठ व्यक्तिगत रूप से पढ़ाएँ। उनका अनुग्रह ही काफी था।

एक बार एक भक्त ने सपने में महाराजजी को देखा। उठने के बाद...

युवक ने महाराजजी को चिट्ठी लिखी जिसमें उसने सपने का विवरण देकर यह प्रार्थना समर्पित की कि महाराजजी मन्त्र के बारे में मार्गदर्शन दें।

चिट्ठी मिलने पर महाराजजी ने श्रीमठ की ओर से प्रामाणिक तौर पर उसको जवाब भेजने का आदेश दिया...

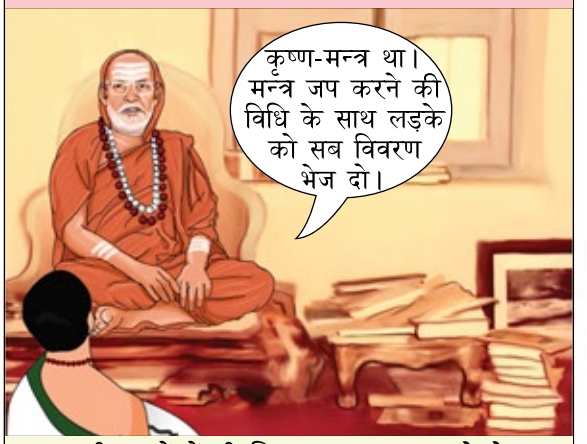

महाराजजी सपनों में भी शिक्षा प्रदान कर सकते थे।

महाराजजी आध्यात्मिक शक्ति के ऐसे भण्डार थे कि संकल्प मात्र से ही निर्विकल्प समाधि और यहाँ तक कि जीवन्मुक्ति भी प्रदान करने का सामर्थ्य रखते थे।

एकदा महाराजजी के दर्शन करने एक बालक शृंगेरी आया। उसे एक साल पहले महाराजजी ने मन्त्र दीक्षा प्रदान की थी। ध्यान की विधियों से पूर्व-परिचित न होने के बावजूद, दीक्षा पाने के तुरंत बाद वह किशोर अपने आप प्रतिदिन ध्यान में मग्न होकर अत्यन्त आनंद का अनुभव करने लगा था।

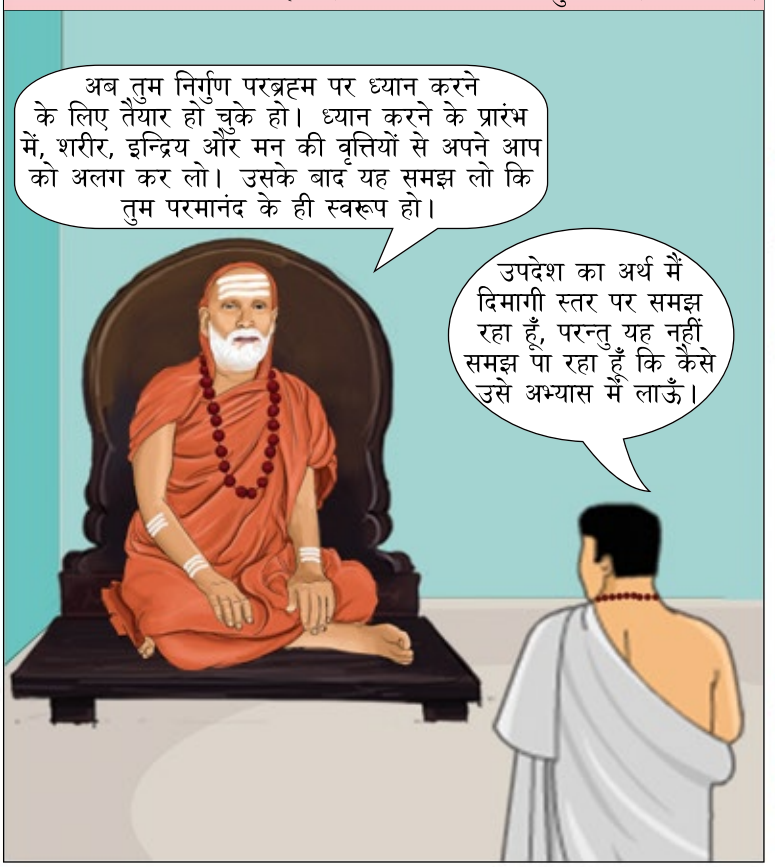

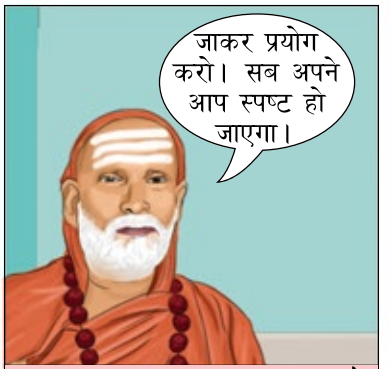

शिष्य ने आदेश का पालन किया, और तुरंत निर्विकल्प समाधि को प्राप्त किया।

कुछ महीने बाद...

यह वचन उसी क्षण सत्य साबित हुआ और शिष्य को जीवन्मुक्ति प्राप्त हो गई।

महाराजजी ने शारदापीठ के लिए अपने उत्तराधिकारी के रूप में सीताराम आंजनेयुलु नाम के अत्यन्त प्रतिभाशाली और भगवत्परायण ब्रह्मचारी को चुना।

११ नवम्बर सन १९७४ के दिन महाराजजी ने अपने इस शिष्य को परमहंस सन्यास प्रदान किया और दीक्षा नाम दिया "श्री भारतीतीर्थ"।

बाल सन्यासी ने कठोर तपस्या की और महाराजजी से शास्त्रों का अध्ययन श्रद्धापूर्वक किया; अपने गुरु महाराज के कई यात्राओं में उनका साथ निभाया और अत्यन्त निष्ठावान शिष्य बने।

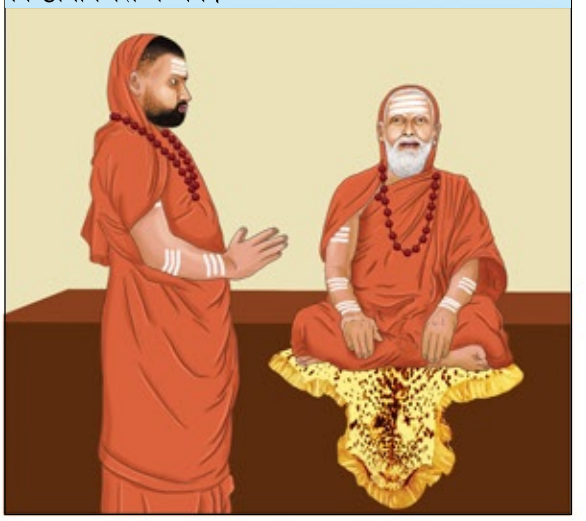

सनातन धर्म और आध्यात्मिक चिन्तन के अनुसरण और प्रचार करके भारत के लोगों का सच्चा और स्थायी कल्याण बनाए रखने के इनके गुरुवर्य के शिरोधार्य कार्यों को ये बड़ी तत्परता के साथ आगे बढ़ाते चले आए हैं।

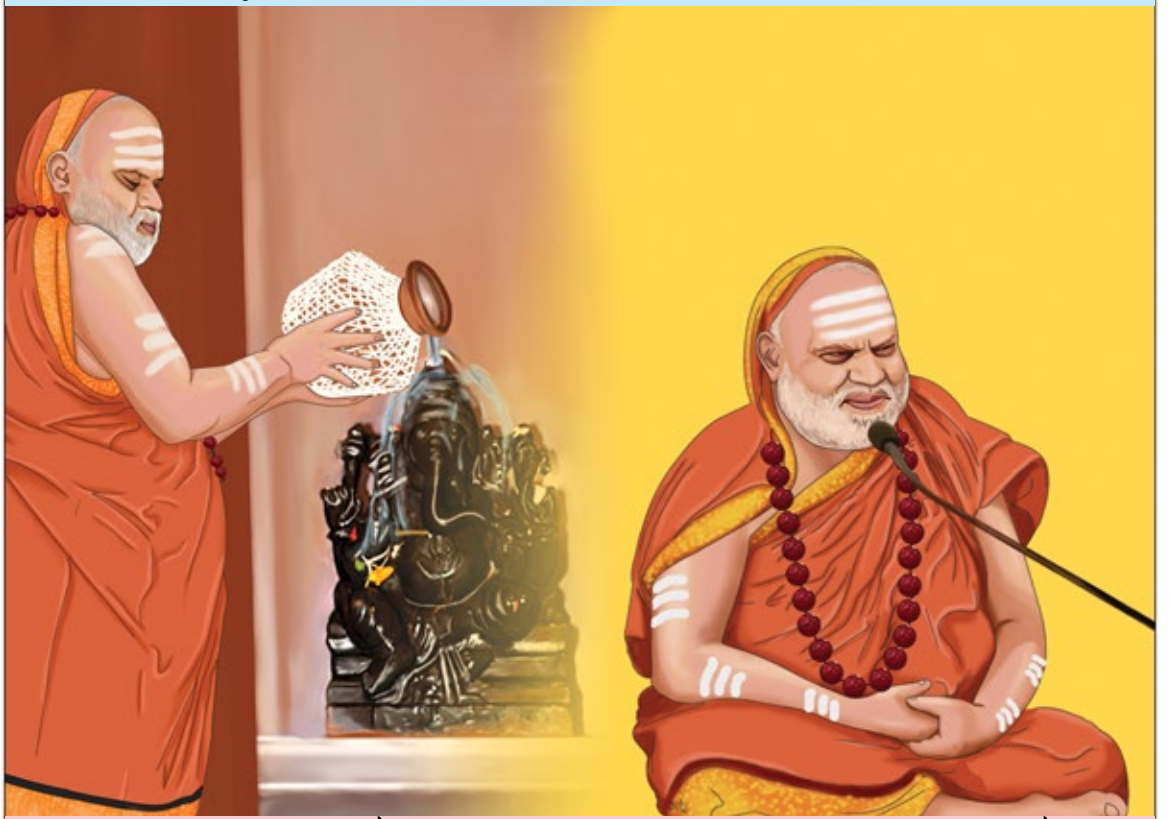

शास्त्रों में प्रवीणता के लिए सुप्रसिद्ध और अनेकानेक सद्गुणों से सम्पन्न, ये पण्डित, साधु-सन्त, शासनाध्यक्ष और साधारण लोगों के समादर और स्नेह के पात्र बने। महाराजजी के ये प्रथम शिष्य अपने महान गुरुवर्य के योग्य उत्तराधिकारी बने।

महाराजजी को वृद्धावस्था में भी हर दिन सुबह से लेकर रात तक श्रमदायक काम करते हुए देखकर एक भक्त ने एक बार उनसे पूछ ही लिया...

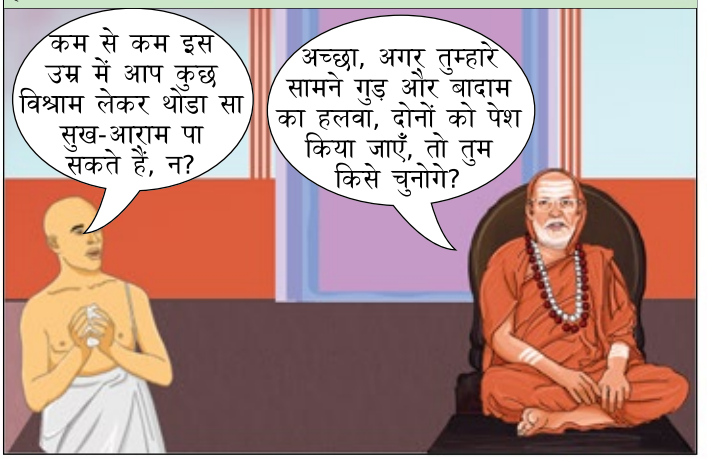

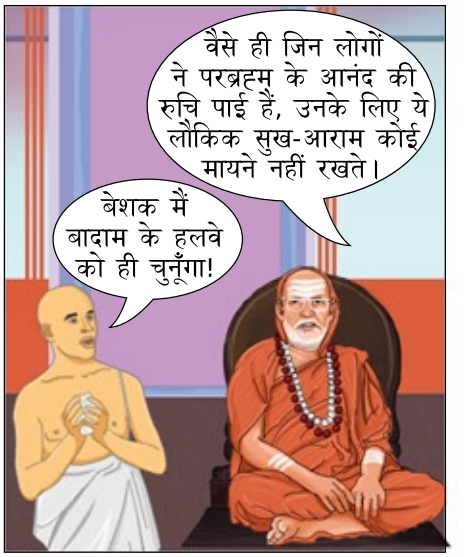

सन १९८२ में महाराजजी को दिल में अत्यन्त पीड़ा हुई। भारी मात्रा में दी गई दवाइयों के कारण वे अर्धमूर्छित अवस्था में पड़ गए। उनको अपने परिवेश की प्रज्ञा भी नहीं थी, पर उन्होंने धीमे स्वर में यह संस्कृत श्लोक बोलना शुरु किया...

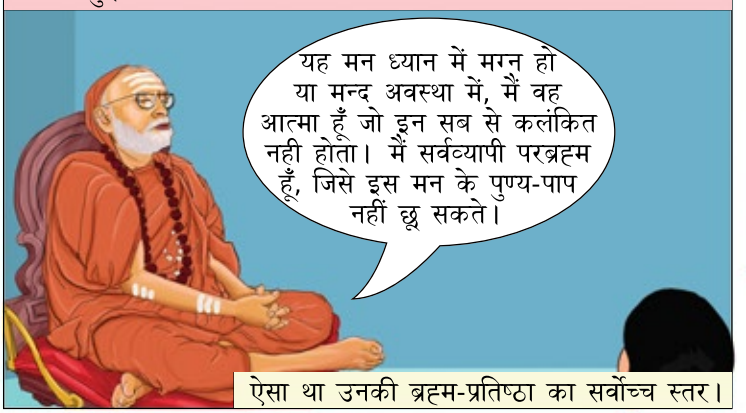

ऐसा था उनकी ब्रह्म-प्रतिष्ठा का सर्वोच्च स्तर।

एक अवसर पर उनको देखने के लिए आए हुए एक डाक्टर से महाराजजी ने कहा कि उन्हे साँस लेने में कठिनाई उत्पन्न हुई थी।

कुछ महीने बाद...

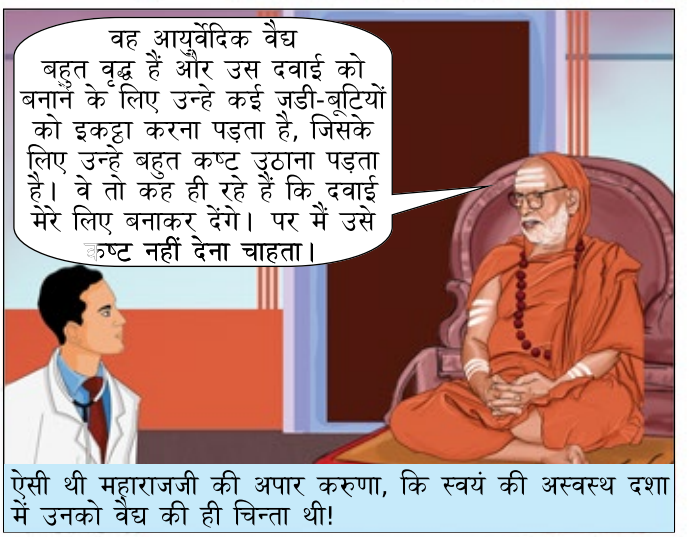

ऐसी थी महाराजजी की अपार करुणा, कि स्वयं की अस्वस्थ दशा में उनको वैद्य की ही चिन्ता थी!

सितंबर सन १९८९ में महाराजजी की तबीयत बहुत बिगड़ गई। उनके कमरे के बाहर लेटा हुआ परिचारक आधी रात नींद से जागा।

बिना आवाज़ किए वह कमरे के अंदर गया। महाराजजी जागे हुए थे और बहुत दर्द में थे। वे भगवान का नाम हल्के स्वर में दुहरा रहे थे। परिचारक को देखते ही...

इतनी पीड़ा में भी उनको दूसरों के आराम की ही परवाह थी। अपने विषय में तो उनकी यही सोच थी कि शरीर को उसकी यात्रा की समाप्ति की ओर चलने के लिए छोड दें।

२१ सितंबर सन १९८९ के दिन महाराजजी ने निर्णय किया कि देह को त्याग देने का समय आ गया है।

एक बार महाराजजी ने एक भक्त से कहा था...

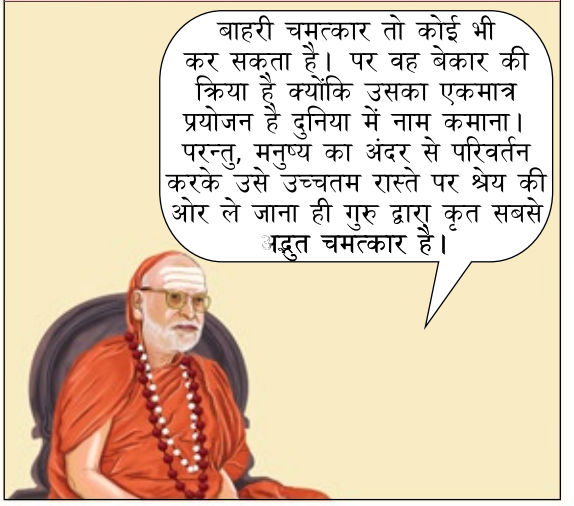

विस्मयकारक और साथ ही साथ अत्यन्त प्रेरणात्मक जीवन जीने वाले ये अपूर्व सन्त ने इस सबसे अद्भुत चमत्कार को अनगिनत बार किया था।

वे अब दृष्टिगोचर नहीं रहे, परन्तु प्रेम से जो भी उन्हें स्मरण करता है, उसपर आज भी अपना अनुग्रह बरसाते रहते हैं।

उपदेश

भगवान की करुणा अपार है। अतः अगर हम अपने आप को उनके चरणों में अर्पित कर देंगे, तो वे हमारे दोषों के बावजूद हमें अवश्य अपना लेंगे।

हमें ऐसा सोचना चाहिए - "जैसे मैं नहीं चाहता कि मुझे कष्ट हो, उसी तरह दूसरों को भी कष्ट नहीं होना चाहिए"।

दान न सिर्फ दूसरों को आनंद देता है, परन्तु देने वाले को भी श्रेय लाता है ।

वचन सच होनी चाहिए और दूसरों के लिए सुखद और लाभदायक भी होनी चाहिए।

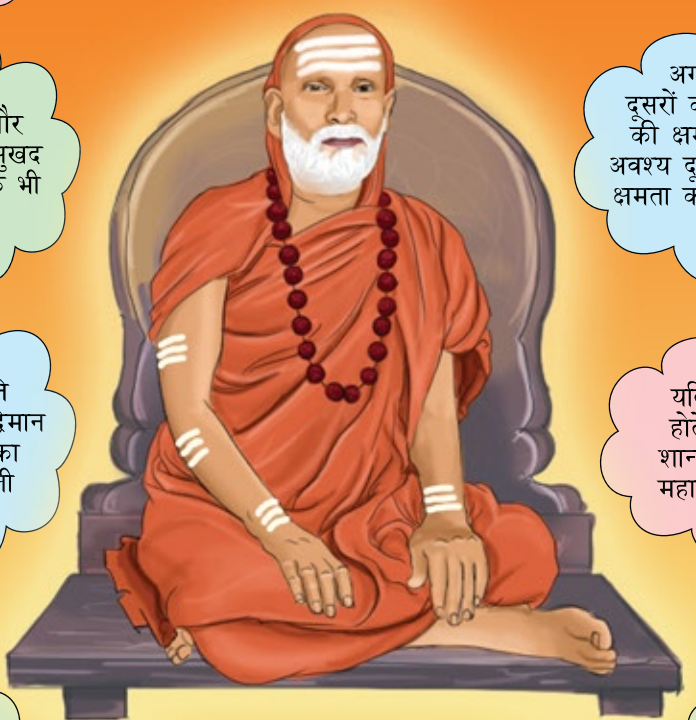

अगर हम में दूसरों की मदद करने की क्षमता हो, तो हमें अवश्य दूसरों के लिए उस क्षमता का उपयोग करना चाहिए।

साधारण मानव वस्तुओं को संपत्ति मानता है, पर बुद्धिमान के लिए वस्तुओं का अभाव ही असली संपत्ति है।

यदि उकसाव के होते हुए भी हम शान्त रहेंगे, तब हम महान बन जाएँगे।

जब बुरे संस्कार तुम्हें आपत्ति की ओर उकसाएँ, तब तुम्हे अपने ही प्रयत्न से उन्हें काबू मे लाना पड़ेगा।

ईश्वर ही सब का मूलतत्त्व है।

इस दुनिया में प्रशंसा या निन्दा, दोनों का कोई मूल्य नहीं है।

ईश्वर की कृपा सभी के लिए है।

महान सन्तों का यही लक्षण है कि दूसरों की भलाई करें।

सब कुछ ईश्वर को अर्पित करके हमें निश्चिन्त रहना चाहिए।

हमे ईश्वर का चिन्तन सदैव होना चाहिए।

दूसरों के सद्गुणों का ग्रहण करना चाहिए, न ही दोषों को खोज निकालना।